

नवाचार, ज्ञान एवं सतत विकास वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति में ज्ञान-आधारित नवाचार की भूमिका

प्रो. महालक्ष्मी जौहरी

विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग

डीन, कला संकाय/डीन छात्र कल्याण

पी.के. विश्वविद्यालय शिवपुरी मध्य प्रदेश भारत

सारांश :

इक्कीसवीं सदी में विकास की अवधारणा केवल पूँजी संचय और भौतिक संसाधनों के दोहन तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह ज्ञान, नवाचार तथा उनकी सामाजिक एवं पारिस्थितिक स्थिरता के इर्द-गिर्द पुनर्परिभाषित हुई है। प्रस्तुत शोध-पत्र इस केंद्रीय प्रश्न की पड़ताल करता है कि ज्ञान-आधारित नवाचार संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्यों (Sustainable Development Goals) की प्राप्ति में किस प्रकार निर्णायक भूमिका निभाता है। शुम्पीटर की 'सृजनात्मक विध्वंस' की संकल्पना (शुम्पीटर, 1934) से लेकर अंतर्जात संवृद्धि सिद्धांत (रोमर, 1990) और राष्ट्रीय नवाचार प्रणाली के ढाँचे (फ्रीमैन, 1987; लुंडवाल, 1992) तक की सैद्धांतिक यात्रा का विश्लेषण करते हुए यह अध्ययन तर्क प्रस्तुत करता है कि ज्ञान एक ऐसा 'वैश्विक सार्वजनिक हित' है जिसका न्यायसंगत सृजन एवं प्रसार ही समावेशी और सतत विकास की पूर्वशर्त है (स्टिग्लिट्ज़, 1999; विश्व बैंक, 1999)। शोध-पत्र गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति अपनाते हुए द्वितीयक स्रोतों की समीक्षा के आधार पर यह दर्शाता है कि नवाचार जब गरीबी उन्मूलन, स्वच्छ ऊर्जा, स्वास्थ्य और जलवायु कार्रवाई जैसे लक्ष्यों की दिशा में अभिमुख होता है, तभी वह वास्तविक विकास में परिणत होता है। अंत में विकासशील देशों, विशेषकर भारत, के संदर्भ में नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

मुख्य शब्द (Keywords)

ज्ञान-आधारित नवाचार, सतत विकास लक्ष्य, ज्ञान अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय नवाचार प्रणाली, समावेशी विकास, वैश्विक सार्वजनिक हित, डिजिटल विभाजन।

1. प्रस्तावना

मानव सभ्यता के इतिहास में प्रत्येक बड़ी आर्थिक एवं सामाजिक छलांग किसी न किसी ज्ञान-क्रांति का परिणाम रही है—चाहे वह कृषि का आविष्कार हो, मुद्रण यंत्र हो, अथवा औद्योगिक क्रांति की भाप-शक्ति। परंतु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में ज्ञान का स्थान एक सहायक कारक से बदलकर उत्पादन का केंद्रीय संसाधन बन गया है। यही कारण है कि आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं को

'ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था' (knowledge-based economy) कहा जाने लगा, जहाँ आर्थिक संवृद्धि का सबसे बड़ा स्रोत सूचना, विचार और मानव-कौशल है (ओईसीडी, 1996)। इसी संक्रमण को पीटर ड्रकर ने 'उत्तर-पूँजीवादी समाज' की संज्ञा दी, जिसमें भूमि, श्रम और पूँजी की अपेक्षा ज्ञान ही निर्णायक उत्पादक शक्ति बन जाता है (ड्रकर, 1993)।

दूसरी ओर, विकास की अवधारणा भी इसी काल में गहन पुनर्विचार से गुज़री। ब्रुंटलैंड आयोग की ऐतिहासिक रिपोर्ट 'हमारा साझा भविष्य' ने सतत विकास को इस रूप में परिभाषित किया कि यह वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति भविष्य की पीढ़ियों की क्षमता से समझौता किए बिना करता है (डब्ल्यूसीईडी, 1987)। अमर्त्य सेन ने विकास को स्वतंत्रता के विस्तार के रूप में देखा, जहाँ आर्थिक वृद्धि साध्य नहीं बल्कि मानवीय क्षमताओं के संवर्धन का साधन मात्र है (सेन, 1999)। जब इन दोनों धाराओं—ज्ञान-क्रांति और सतत विकास—को साथ रखकर देखा जाता है, तो एक मौलिक प्रश्न उभरता है: क्या ज्ञान और नवाचार स्वतः ही सतत एवं समावेशी विकास की ओर ले जाते हैं, अथवा उन्हें सचेत रूप से सामाजिक लक्ष्यों की दिशा में अभिमुख करना पड़ता है?

वर्ष 2015 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अंगीकृत '2030 का एजेंडा' और उसके सत्रह सतत विकास लक्ष्य इस प्रश्न को नीतिगत तात्कालिकता प्रदान करते हैं (संयुक्त राष्ट्र, 2015)। गरीबी उन्मूलन से लेकर जलवायु परिवर्तन तक फैले इन लक्ष्यों की प्राप्ति परंपरागत साधनों से संभव नहीं; इसके लिए प्रौद्योगिकीय, संस्थागत और सामाजिक नवाचार अनिवार्य है (सैक्स, 2015)। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि ज्ञान-आधारित नवाचार किन तंत्रों के माध्यम से वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान देता है, इस प्रक्रिया में कौन-सी बाधाएँ हैं, और विकासशील देशों के लिए इसका क्या नीतिगत निहितार्थ है। यह अध्ययन गुणात्मक-विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है और मुख्यतः सैद्धांतिक साहित्य तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के प्रतिवेदनों जैसे द्वितीयक स्रोतों का समालोचनात्मक विश्लेषण करता है।

2. संकल्पनात्मक ढाँचा: ज्ञान, नवाचार और सतत विकास

किसी भी विश्लेषण से पूर्व तीन केंद्रीय संकल्पनाओं का स्पष्टीकरण आवश्यक है। सर्वप्रथम, 'ज्ञान' केवल सूचना का संचय नहीं है; यह सूचना को अर्थ, संदर्भ और अनुप्रयोग-क्षमता प्रदान करने की प्रक्रिया है। नोनाका और ताकेउची ने ज्ञान की दो कोटियों—स्पष्ट (explicit) और अंतर्निहित (tacit)—के बीच अंतर करते हुए दर्शाया कि संगठनात्मक नवाचार वस्तुतः इन दोनों के बीच निरंतर रूपांतरण का सर्पिल है, जिसमें व्यक्तिगत अनुभव सामूहिक क्षमता में परिवर्तित होता है (नोनाका व ताकेउची, 1995)। ज्ञान की एक विशिष्टता यह है कि वह 'गैर-प्रतिद्वंद्वी' (non-rival) है—एक व्यक्ति द्वारा उसके उपयोग से दूसरे के

लिए उसकी उपलब्धता कम नहीं होती—और इसी कारण उसे प्रायः 'वैश्विक सार्वजनिक हित' के रूप में देखा जाता है (स्टिग्लिट्ज़, 1999)।

दूसरी संकल्पना 'नवाचार' है। जोसेफ शुम्पीटर ने नवाचार को आर्थिक विकास का इंजन मानते हुए इसे नए उत्पादों, उत्पादन-विधियों, बाज़ारों, कच्चे माल के स्रोतों तथा संगठनात्मक रूपों के 'नवीन संयोजन' के रूप में परिभाषित किया, और 'सृजनात्मक विध्वंस' की प्रक्रिया को पूँजीवाद की गत्यात्मकता का सार बताया, जिसमें पुरानी संरचनाएँ ध्वस्त होकर नई को स्थान देती हैं (शुम्पीटर, 1934)। समकालीन साहित्य में नवाचार को केवल तकनीकी आविष्कार तक सीमित न रखकर एक व्यापक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है, जिसमें आविष्कार (invention), उसका व्यावसायीकरण और अंततः समाज में प्रसार (diffusion) सम्मिलित हैं (फागरबर्ग, 2005; रोजर्स, 2003)। आविष्कार और नवाचार में यह भेद महत्वपूर्ण है: एक विचार तब तक नवाचार नहीं बनता जब तक वह वास्तविक उपयोग में आकर मूल्य सृजित न करे।

तीसरी संकल्पना 'सतत विकास' है, जो आर्थिक समृद्धि, सामाजिक समावेशन और पारिस्थितिक अखंडता के त्रि-आयामी संतुलन की माँग करती है (डब्ल्यूसीईडी, 1987)। इन तीनों संकल्पनाओं को जोड़ने वाली कड़ी यह अंतर्दृष्टि है कि दीर्घकालिक आर्थिक संवृद्धि का स्रोत बाह्य नहीं बल्कि अंतर्जात है—अर्थात् यह अर्थव्यवस्था के भीतर ज्ञान-सृजन और मानव-पूँजी निवेश से उत्पन्न होता है (रोमर, 1990)। रॉबर्ट सोलो के प्रारंभिक विश्लेषण ने पहले ही दर्शाया था कि प्रति-व्यक्ति उत्पादन-वृद्धि का बड़ा भाग पूँजी या श्रम की मात्रा से नहीं, अपितु तकनीकी प्रगति—अर्थात् ज्ञान के संचय—से स्पष्ट होता है (सोलो, 1957)। इस प्रकार सैद्धांतिक स्तर पर ज्ञान, नवाचार और विकास एक अभिन्न त्रयी बन जाते हैं।

3. ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था और नवाचार की गतिकी

ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था वह व्यवस्था है जिसमें ज्ञान का सृजन, वितरण और उपयोग आर्थिक क्रियाकलापों तथा रोज़गार का प्राथमिक चालक बन जाता है (ओईसीडी, 1996)। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में अनुसंधान एवं विकास (R&D), उच्च शिक्षा, सूचना-प्रौद्योगिकी और बौद्धिक संपदा का महत्व भौतिक अवसंरचना से कम नहीं आँका जाता। जोएल मोकिर ने ऐतिहासिक विश्लेषण में यह प्रतिपादित किया कि औद्योगिक क्रांति की निरंतरता और आधुनिक संवृद्धि इसलिए संभव हुई क्योंकि 'क्यों' का प्रस्तावात्मक ज्ञान (propositional knowledge) और 'कैसे' का प्रायोगिक ज्ञान (prescriptive knowledge) एक-दूसरे को पुष्ट करने लगे, जिससे नवाचार आत्म-पोषी बन गया (मोकिर, 2002)।

नवाचार की गतिकी को समझने के लिए 'अवशोषण क्षमता' (absorptive capacity) की संकल्पना उपयोगी है। कोहेन और लेविथल के अनुसार किसी फर्म अथवा राष्ट्र की बाहरी ज्ञान को पहचानने,

आत्मसात करने और व्यावसायिक उद्देश्यों में लगाने की सामर्थ्य उसके पूर्व-संचित ज्ञान पर निर्भर करती है (कोहेन व लेविथल, 1990)। इसका गहन निहितार्थ यह है कि केवल प्रौद्योगिकी का आयात पर्याप्त नहीं; उसे ग्रहण करने के लिए घरेलू शिक्षा, कौशल और अनुसंधान का आधार होना चाहिए। यही कारण है कि प्रौद्योगिकी-हस्तांतरण की अनेक परियोजनाएँ विकासशील देशों में अपेक्षित परिणाम नहीं दे पातीं— अवशोषण क्षमता के अभाव में आयातित ज्ञान स्थानीय संदर्भ में जड़ नहीं पकड़ पाता।

नवाचार की एक और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति 'खुला नवाचार' (open innovation) है, जिसमें संगठन आंतरिक अनुसंधान के साथ-साथ बाहरी विचारों, विश्वविद्यालयों, स्टार्टअप और उपयोगकर्ताओं के ज्ञान को भी सचेत रूप से समाहित करते हैं (चेस्ब्रो, 2003)। यह प्रतिमान बंद, स्वामित्व-केंद्रित प्रयोगशालाओं से हटकर सहयोगात्मक ज्ञान-सृजन की ओर संकेत करता है, जो सतत विकास की जटिल, बहु-हितधारक चुनौतियों के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है। कार्लोटा पेरेज़ ने दीर्घ-तरंग विश्लेषण में दर्शाया कि प्रत्येक तकनीकी-आर्थिक प्रतिमान अपने साथ अवसंरचना, संस्थाओं और सामाजिक व्यवहार के व्यापक रूपांतरण की माँग लाता है; अतः डिजिटल एवं हरित प्रौद्योगिकियों का वर्तमान संक्रमण भी केवल तकनीकी नहीं, बल्कि गहन संस्थागत परिघटना है (पेरेज़, 2002)। माइकल पोर्टर के अनुसार राष्ट्रों की प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त स्थिर संसाधन-संपन्नता से नहीं, बल्कि निरंतर नवाचार और उन्नयन की क्षमता से निर्धारित होती है (पोर्टर, 1990)।

इस बिंदु पर एक पद्धतिगत स्पष्टीकरण उपयोगी होगा। प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक क्षेत्र-सर्वेक्षण पर नहीं, बल्कि प्रतिष्ठित सैद्धांतिक ग्रंथों, सहकर्मि-समीक्षित शोध-पत्रिकाओं तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के आधिकारिक प्रतिवेदनों के समालोचनात्मक संश्लेषण पर आधारित है। इस गुणात्मक पद्धति की सीमा यह है कि यह मात्रात्मक कार्य-कारण संबंध स्थापित नहीं करती; परंतु इसका बल इस बात में है कि यह विभिन्न सैद्धांतिक धाराओं को एक साझा विश्लेषणात्मक ढाँचे में पिरोकर व्यापक प्रवृत्तियों और नीतिगत निहितार्थों को उजागर करती है। ज्ञान, नवाचार और विकास जैसे बहु-आयामी विषय के लिए ऐसा एकीकृत दृष्टिकोण विशेष रूप से उपयुक्त है, क्योंकि यहाँ चुनौती किसी एकल चर की माप नहीं, बल्कि परस्पर-संबद्ध प्रक्रियाओं की समझ है।

4. सतत विकास लक्ष्य और ज्ञान-आधारित नवाचार की भूमिका

सत्रह सतत विकास लक्ष्य परस्पर संबद्ध एक ऐसी प्रणाली रचते हैं जिसमें किसी एक लक्ष्य की प्रगति प्रायः अन्य लक्ष्यों पर निर्भर करती है (सैक्स, 2015)। ज्ञान-आधारित नवाचार इन लक्ष्यों की प्राप्ति में अनेक ठोस माध्यमों से योगदान करता है। स्वास्थ्य के क्षेत्र (लक्ष्य 3) में जैव-प्रौद्योगिकी, टीका-विकास और डिजिटल स्वास्थ्य-प्रणालियों ने रोग-निदान एवं उपचार की पहुँच को व्यापक बनाया है; टेलीमेडिसिन और मोबाइल-

आधारित निदान ने दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों तक चिकित्सा-ज्ञान पहुँचाया है। यहाँ नवाचार का मूल्य केवल तकनीकी उत्कृष्टता में नहीं, बल्कि उसकी समावेशी पहुँच में निहित है।

ऊर्जा (लक्ष्य 7) और जलवायु कार्रवाई (लक्ष्य 13) के क्षेत्र में ज्ञान-आधारित नवाचार की भूमिका सर्वाधिक स्पष्ट है। सौर एवं पवन ऊर्जा की लागत में विगत दशक में हुई नाटकीय गिरावट किसी एकल आविष्कार का नहीं, अपितु निरंतर अनुसंधान, विनिर्माण-अनुभव और नीतिगत समर्थन के संचयी 'सीखने' (learning-by-doing) का परिणाम है। यह ठीक उसी अंतर्जात प्रक्रिया का उदाहरण है जिसे संवृद्धि-सिद्धांतकारों ने रेखांकित किया (रोमर, 1990)। इसी प्रकार कृषि (लक्ष्य 2) में उन्नत बीज, परिशुद्ध कृषि और मौसम-सूचना सेवाओं ने उत्पादकता और जलवायु-अनुकूलन को साथ-साथ संभव किया है। तथापि यह ध्यातव्य है कि हरित क्रांति के अनुभव ने यह भी सिखाया कि प्रौद्योगिकी यदि सामाजिक-पारिस्थितिक संदर्भ की उपेक्षा करे तो असमानता और पर्यावरणीय हास को जन्म दे सकती है; अतः नवाचार की दिशा और वितरण उसकी मात्रा जितने ही महत्वपूर्ण हैं।

शिक्षा (लक्ष्य 4) की भूमिका इस पूरे विमर्श की धुरी है, क्योंकि वही अवशोषण क्षमता, आलोचनात्मक विवेक और नवाचार-संस्कृति की आधारशिला रखती है। डिजिटल शिक्षण-मंच, मुक्त शैक्षिक संसाधन और अनुकूली अधिगम-प्रौद्योगिकियाँ ज्ञान तक पहुँच का लोकतंत्रीकरण कर सकती हैं, बशर्ते वे भाषा, अवसंरचना और लैंगिक बाधाओं के प्रति संवेदनशील हों। इसी प्रकार लैंगिक समानता (लक्ष्य 5) और नवाचार का संबंध द्विपक्षीय है: एक ओर प्रौद्योगिकी महिलाओं की आर्थिक भागीदारी और सुरक्षा बढ़ा सकती है, दूसरी ओर यदि नवाचार-प्रणाली में स्त्रियों का प्रतिनिधित्व सीमित रहा तो समाधान स्वयं पक्षपाती हो सकते हैं। इन उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि सतत विकास लक्ष्य किसी रैखिक शृंखला में नहीं, बल्कि एक जटिल जाल में गुँथे हैं, जहाँ ज्ञान-आधारित नवाचार अनेक लक्ष्यों को एक साथ प्रभावित करने वाला उत्प्रेरक बन सकता है (सैक्स, 2015; यूनेस्को, 2005)।

उल्लेखनीय है कि 2030 एजेंडा स्वयं नवाचार को एक अनुप्रस्थ (cross-cutting) साधन के रूप में स्वीकार करता है—लक्ष्य 9 अवसंरचना, औद्योगीकरण और नवाचार को स्पष्ट रूप से जोड़ता है, जबकि लक्ष्य 17 प्रौद्योगिकी-हस्तांतरण, क्षमता-निर्माण और वैश्विक भागीदारी पर बल देता है (संयुक्त राष्ट्र, 2015)। यूनेस्को की रिपोर्ट 'ज्ञान समाजों की ओर' इस बात को रेखांकित करती है कि सूचना समाज और ज्ञान समाज में अंतर है: सूचना तक पहुँच स्वतः ज्ञान में परिणत नहीं होती जब तक शिक्षा, आलोचनात्मक विवेक और सांस्कृतिक विविधता उसे अर्थपूर्ण न बनाएँ (यूनेस्को, 2005)। इस दृष्टि से सतत विकास हेतु नवाचार का लक्ष्य केवल तकनीकी समाधान नहीं, बल्कि समावेशी 'ज्ञान समाजों' का निर्माण है जहाँ नवाचार की क्षमता सामाजिक रूप से व्यापक रूप से वितरित हो।

इसके साथ ही यह स्वीकार करना आवश्यक है कि ज्ञान एक वैश्विक सार्वजनिक हित होते हुए भी बौद्धिक संपदा अधिकारों, बाज़ार-प्रोत्साहनों और असमान अनुसंधान-क्षमताओं के कारण असमान रूप से उपलब्ध रहता है (स्टिग्लिट्ज़, 1999)। विश्व बैंक की 'विकास हेतु ज्ञान' रिपोर्ट ने विकासशील देशों के समक्ष दो अंतरालों की पहचान की—'ज्ञान अंतराल' (उन्नत और विकासशील देशों के बीच जानकारी की खाई) और 'सूचना समस्याएँ' (बाज़ार में सूचना की असमान उपलब्धता); दोनों को पाटना ही समतामूलक विकास की कुंजी है (विश्व बैंक, 1999)। अतः नवाचार-नीति का प्रश्न केवल 'कितना नवाचार' का नहीं, बल्कि 'किसके लिए और किसके द्वारा नवाचार' का भी है।

5. नवाचार प्रणालियाँ: संस्थागत आयाम

नवाचार व्यक्तिगत प्रतिभा की अकेली उपज नहीं, बल्कि एक प्रणालीगत परिघटना है। 'राष्ट्रीय नवाचार प्रणाली' (National System of Innovation) की संकल्पना यह प्रतिपादित करती है कि किसी देश की नवाचार-क्षमता उसकी फर्मों, विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों, वित्तीय संस्थाओं और सरकारी नीतियों के बीच अंतःक्रिया के जाल पर निर्भर करती है (फ्रीमैन, 1987; लुंडवाल, 1992; नेल्सन, 1993)। लुंडवाल इस बात पर बल देते हैं कि नवाचार मूलतः एक 'अंतःक्रियात्मक अधिगम' (interactive learning) की प्रक्रिया है, जिसमें उत्पादक और उपयोगकर्ता के बीच संवाद निर्णायक होता है (लुंडवाल, 1992)। इस दृष्टि से किसी राष्ट्र की समस्या प्रायः पृथक संस्थाओं की कमज़ोरी नहीं, बल्कि उनके बीच संबंधों और सूचना-प्रवाह की दुर्बलता होती है।

इसी संस्थागत विचारधारा का विस्तार 'त्रिकुंडलिनी' (Triple Helix) मॉडल में मिलता है, जो विश्वविद्यालय, उद्योग और सरकार के बीच गतिशील और अतिव्यापी संबंधों को नवाचार का स्रोत मानता है (एट्ज़कोविट्ज़ व लेडेसडॉर्फ, 2000)। इस मॉडल में विश्वविद्यालय केवल शिक्षण-संस्थान नहीं रहते, बल्कि उद्यमशीलता और ज्ञान-हस्तांतरण के सक्रिय केंद्र बन जाते हैं। सतत विकास के संदर्भ में कुछ विद्वान इसे 'चतुष्कुंडलिनी' (Quadruple Helix) तक विस्तृत करते हैं, जिसमें नागरिक समाज और जनता को चौथे हितधारक के रूप में सम्मिलित किया जाता है—यह विस्तार विशेष रूप से प्रासंगिक है क्योंकि सतत विकास की चुनौतियाँ सामाजिक स्वीकृति और सामुदायिक भागीदारी के बिना हल नहीं हो सकतीं।

नवाचार प्रणाली की सुदृढ़ता वित्तीय संस्थाओं और नीति-निर्माण की गुणवत्ता पर भी निर्भर करती है। नवीन प्रौद्योगिकियों में निहित उच्च जोखिम और दीर्घ प्रतिफल-अवधि के कारण बाज़ार अकेले पर्याप्त निवेश प्रायः नहीं जुटा पाता; अतः लोक-वित्त, मिशन-उन्मुख अनुसंधान और नियामकीय समर्थन की भूमिका अपरिहार्य हो जाती है (हॉल व रोज़नबर्ग, 2010)। इतिहास साक्षी है कि इंटरनेट, जीपीएस और अनेक जीवनरक्षक औषधियों की आधारभूत खोजें सार्वजनिक रूप से वित्तपोषित अनुसंधान से निकलीं।

इसलिए नवाचार को केवल निजी उद्यमशीलता तक सीमित समझना भ्रामक है; राज्य प्रायः जोखिम उठाने वाला और दिशा निर्धारित करने वाला सक्रिय भागीदार होता है, विशेषकर तब जब लक्ष्य सामाजिक कल्याण और पारिस्थितिक स्थिरता हो।

6. विकासशील देशों और भारत के संदर्भ में

विकासशील देशों के लिए ज्ञान-आधारित नवाचार एक साथ अवसर और चुनौती दोनों है। एक ओर, वे 'देर से आने का लाभ' (advantage of backwardness) उठाकर परिपक्व प्रौद्योगिकियों को अपनाकर विकास-पथ को संक्षिप्त कर सकते हैं; दूसरी ओर, अवशोषण क्षमता के अभाव में यह लाभ अवास्तविक रह जाता है (कोहेन व लेविथल, 1990)। भारत का अनुभव इस द्वंद्व का रोचक उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक ओर सूचना-प्रौद्योगिकी सेवाओं, अंतरिक्ष कार्यक्रम, जेनेरिक औषधि उद्योग और डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना (जैसे विशिष्ट पहचान और एकीकृत भुगतान प्रणाली) में देश ने विश्व-स्तरीय नवाचार-क्षमता प्रदर्शित की है; दूसरी ओर अनुसंधान एवं विकास पर सकल घरेलू उत्पाद का अपेक्षाकृत निम्न अनुपात, कौशल-अंतराल और औपचारिक अनुसंधान का सीमित औद्योगिक अनुप्रयोग निरंतर चुनौतियाँ बने हुए हैं।

विकासशील संदर्भ में एक विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतिमान 'मितव्ययी नवाचार' (frugal innovation) अथवा 'जुगाड़' है, जिसमें सीमित संसाधनों में किफ़ायती, टिकाऊ और सुलभ समाधान विकसित किए जाते हैं। ऐसे नवाचार—चाहे कम लागत की चिकित्सा-उपकरण हों, सौर-लालटेन हों अथवा मोबाइल-आधारित वित्तीय सेवाएँ—प्रायः पिरामिड के निचले हिस्से की आबादी की वास्तविक आवश्यकताओं से जन्म लेते हैं और इसीलिए सतत विकास लक्ष्यों के समावेशी उद्देश्य से स्वाभाविक रूप से संरेखित होते हैं। ये उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि नवाचार की सार्थकता उसकी तकनीकी जटिलता में नहीं, बल्कि सामाजिक समस्या-समाधान की उसकी क्षमता में निहित है (रोजर्स, 2003)।

तथापि विकासशील देशों के समक्ष एक संरचनात्मक चुनौती वैश्विक ज्ञान-व्यवस्था की असमानता है। अनुसंधान-प्रकाशन, पेटेंट-स्वामित्व और उच्च-प्रौद्योगिकी उत्पादन विकसित देशों में केंद्रित है, जिससे विकासशील देश प्रायः ज्ञान के 'उपभोक्ता' बने रहते हैं, 'उत्पादक' नहीं। इस निर्भरता को तोड़ने के लिए घरेलू अनुसंधान-क्षमता, गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा और दक्षिण-दक्षिण सहयोग में निवेश आवश्यक है (विश्व बैंक, 1999; यूनेस्को, 2005)। सेन की क्षमता-दृष्टि यहाँ स्मरणीय है: यदि नवाचार का उद्देश्य मानवीय स्वतंत्रता और क्षमताओं का विस्तार है, तो सफलता का मापदंड केवल पेटेंटों या निर्यात-आँकड़ों में नहीं, अपितु इस प्रश्न में निहित है कि नवाचार ने कितने लोगों के जीवन के वास्तविक विकल्पों को समृद्ध किया (सेन, 1999)।

भारत के नीतिगत अनुभव से कुछ स्थानांतरणीय सबक भी निकलते हैं। डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना को एक 'साझा मंच' के रूप में विकसित करने के दृष्टिकोण ने दर्शाया कि जब आधारभूत तकनीकी क्षमताओं को खुले मानकों पर सार्वजनिक हित के रूप में उपलब्ध कराया जाता है, तो उसके ऊपर निजी और सामाजिक क्षेत्र में नवाचारों की एक शृंखला विकसित हो जाती है—यह खुले नवाचार के सिद्धांत का व्यावहारिक विस्तार है (चेस्ब्रो, 2003)। दूसरा सबक यह है कि नवाचार-नीति को केवल महानगरीय उच्च-प्रौद्योगिकी केंद्रों तक सीमित न रखकर ग्रामीण और अनौपचारिक क्षेत्रों की समस्या-समाधान क्षमता को भी संस्थागत मान्यता एवं वित्तीय समर्थन देना चाहिए। इस प्रकार 'ऊपर से नीचे' की औपचारिक अनुसंधान-प्रणाली और 'नीचे से ऊपर' के जमीनी नवाचार के बीच सेतु बनाना विकासशील देशों की नवाचार-रणनीति का केंद्रीय कार्यभार है (लुंडवाल, 1992; नेल्सन, 1993)।

7. चुनौतियाँ, विरोधाभास और डिजिटल विभाजन

ज्ञान-आधारित नवाचार और सतत विकास के बीच संबंध सीधा एवं स्वतःस्फूर्त नहीं है; इसमें अनेक तनाव और विरोधाभास अंतर्निहित हैं। पहला और सर्वाधिक चर्चित तनाव 'डिजिटल विभाजन' है—इंटरनेट, संगणन-शक्ति और डिजिटल कौशल तक असमान पहुँच नवाचार के लाभों को कुछ वर्गों तक सीमित कर सकती है और विद्यमान असमानताओं को और गहरा कर सकती है। यूनेस्को की चेतावनी यहाँ प्रासंगिक है कि यदि ज्ञान-समाजों का निर्माण समावेशी नहीं हुआ, तो सूचना-क्रांति नए बहिष्करण को जन्म दे सकती है (यूनेस्को, 2005)। सृजनात्मक विध्वंस की प्रक्रिया, जो नवाचार का अनिवार्य अंग है, अल्पकाल में रोजगार-विस्थापन और सामाजिक व्यवधान भी उत्पन्न करती है (शुम्पीटर, 1934); अतः न्यायसंगत संक्रमण (just transition) की नीतियाँ आवश्यक हो जाती हैं।

दूसरा तनाव नवाचार की दिशा से संबंधित है। बाज़ार-प्रेरित नवाचार स्वाभाविक रूप से उन्हीं आवश्यकताओं की ओर झुकता है जहाँ क्रय-शक्ति है, न कि वहाँ जहाँ सामाजिक आवश्यकता सर्वाधिक है। यही कारण है कि उपेक्षित उष्णकटिबंधीय रोगों जैसी समस्याओं पर अनुसंधान-निवेश उनके रोग-भार की तुलना में अत्यल्प रहता है। यह 'दिशात्मक विफलता' दर्शाती है कि नवाचार को सतत विकास लक्ष्यों की ओर मोड़ने के लिए सचेत, मिशन-उन्मुख नीति-हस्तक्षेप अनिवार्य हैं (पेरेज़, 2002; हॉल व रोज़नबर्ग, 2010)। तीसरा विरोधाभास पर्यावरणीय है: प्रौद्योगिकी दक्षता बढ़ाकर संसाधन-खपत घटा सकती है, परंतु 'प्रतिक्षेप प्रभाव' (rebound effect) के कारण दक्षता से हुई बचत प्रायः बढ़ी हुई खपत में पुनः समाहित हो जाती है, जिससे शुद्ध पारिस्थितिक लाभ सीमित रह जाता है।

अंततः, बौद्धिक संपदा व्यवस्था स्वयं एक द्वि-धारी तलवार है। एक ओर पेटेंट नवाचार हेतु आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान करते हैं; दूसरी ओर वे जीवनरक्षक औषधियों और आवश्यक हरित प्रौद्योगिकियों तक

पहुँच को महँगा बनाकर सतत विकास लक्ष्यों के विरुद्ध कार्य कर सकते हैं (स्टिग्लिट्ज़, 1999)। यह तनाव महामारी काल में टीका-पहुँच की बहस में स्पष्ट रूप से उभरा। इन सभी विरोधाभासों का समाधान तकनीकी नहीं, अपितु संस्थागत एवं नैतिक है—यह इस प्रश्न पर निर्भर करता है कि समाज नवाचार को किन मूल्यों और किन प्राथमिकताओं की ओर अभिमुख करना चाहता है।

8. नीतिगत निहितार्थ एवं सुझाव

पूर्ववर्ती विश्लेषण से अनेक नीतिगत निहितार्थ निकलते हैं। सर्वप्रथम, नवाचार-नीति को 'दिशाहीन प्रोत्साहन' से हटकर 'मिशन-उन्मुख' दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, जिसमें सार्वजनिक निवेश स्पष्ट रूप से सतत विकास लक्ष्यों—स्वच्छ ऊर्जा, सर्वजन स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा—की ओर निर्देशित हो। इतिहास दर्शाता है कि राज्य केवल बाज़ार-विफलताओं को सुधारने वाला निष्क्रिय कारक नहीं, बल्कि दिशा-निर्धारक और जोखिम-वाहक सक्रिय भागीदार हो सकता है (हॉल व रोज़नबर्ग, 2010)। दूसरे, अवशोषण क्षमता के निर्माण हेतु शिक्षा और कौशल में दीर्घकालिक निवेश अपरिहार्य है, क्योंकि आयातित प्रौद्योगिकी तभी उपयोगी है जब उसे ग्रहण, अनुकूलित और आगे विकसित करने वाला मानव-आधार उपलब्ध हो (कोहेन व लेविंथल, 1990)।

तीसरे, नवाचार प्रणाली के विभिन्न अंगों—विश्वविद्यालय, उद्योग, सरकार और नागरिक समाज—के बीच संपर्क-तंत्र को सुदृढ़ करना चाहिए, ताकि ज्ञान प्रयोगशाला से समाज तक और समाज की समस्याओं से पुनः प्रयोगशाला तक प्रवाहित हो सके (एट्ज़कोविट्ज़ व लेडेसडॉर्फ, 2000; लुंडवाल, 1992)। चौथे, समावेशन को नीति के केंद्र में रखना होगा: मितव्ययी एवं जन-केंद्रित नवाचार को प्रोत्साहन, डिजिटल अवसंरचना का सर्वसुलभ विस्तार, और हाशिये के समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित करना, ताकि नवाचार असमानता को घटाए, बढ़ाए नहीं (यूनेस्को, 2005)। पाँचवें, वैश्विक स्तर पर ज्ञान को सार्वजनिक हित मानते हुए प्रौद्योगिकी-हस्तांतरण, खुले प्रकाशन और लचीली बौद्धिक-संपदा व्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए, जैसा कि 2030 एजेंडा का लक्ष्य 17 स्वयं आग्रह करता है (संयुक्त राष्ट्र, 2015; स्टिग्लिट्ज़, 1999)। ये सुझाव परस्पर पूरक हैं और इनका सम्मिलित प्रभाव ही ज्ञान-आधारित नवाचार को वास्तविक सतत विकास में परिणत कर सकता है।

9. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र ने यह प्रतिपादित किया कि ज्ञान और नवाचार समकालीन विकास-प्रक्रिया के केंद्रीय चालक हैं, किंतु उनका सतत एवं समावेशी विकास में रूपांतरण स्वतःसिद्ध नहीं है। सैद्धांतिक साहित्य—शुम्पीटर की सृजनात्मक विध्वंस, रोमर के अंतर्जात संवृद्धि सिद्धांत, तथा राष्ट्रीय नवाचार प्रणाली एवं त्रिकुंडलिनी के संस्थागत मॉडल—यह स्पष्ट करते हैं कि नवाचार एक प्रणालीगत, अंतःक्रियात्मक और

संस्था-निर्भर परिघटना है (शुम्पीटर, 1934; रोमर, 1990; लुंडवाल, 1992; एटज़कोविट्ज़ व लेडेसडॉर्फ, 2000)। दूसरी ओर सतत विकास की माँग है कि इस नवाचार-क्षमता को आर्थिक, सामाजिक और पारिस्थितिक संतुलन की दिशा में सचेत रूप से अभिमुख किया जाए (डब्ल्यूसीईडी, 1987; संयुक्त राष्ट्र, 2015)।

मुख्य निष्कर्ष यह है कि नवाचार की मात्रा जितनी ही महत्वपूर्ण उसकी दिशा और वितरण है। डिजिटल विभाजन, दिशात्मक विफलता, प्रतिक्षेप प्रभाव और बौद्धिक-संपदा की असमानता जैसे विरोधाभास दर्शाते हैं कि केवल तकनीकी प्रगति पर निर्भरता अपर्याप्त और कभी-कभी प्रतिकूल भी हो सकती है। इसलिए ज्ञान को वैश्विक सार्वजनिक हित मानते हुए मिशन-उन्मुख नीति, अवशोषण-क्षमता का निर्माण, समावेशी संस्थागत ढाँचा और न्यायसंगत वैश्विक सहयोग—ये चार स्तंभ ही उस पुल का निर्माण करते हैं जो ज्ञान-आधारित नवाचार को वैश्विक लक्ष्यों की वास्तविक प्राप्ति से जोड़ता है। अंततः, अमर्त्य सेन की अंतर्दृष्टि सर्वोपरि है: नवाचार की सार्थकता की अंतिम कसौटी यह है कि उसने मानव-स्वतंत्रता और क्षमताओं के विस्तार में कितना योगदान दिया (सेन, 1999)। भविष्य के अनुसंधान के लिए यह क्षेत्र विशेष रूप से उर्वर है कि विभिन्न देशों की नवाचार-प्रणालियाँ सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में तुलनात्मक रूप से किस प्रकार भिन्न परिणाम देती हैं।

संदर्भ सूची (References)

1. एटज़कोविट्ज़, एच., व लेडेसडॉर्फ, एल. (2000). नवाचार की गतिकी: राष्ट्रीय प्रणालियों एवं “मोड 2” से विश्वविद्यालय-उद्योग-सरकार संबंधों की त्रिकुंडलिनी तक [The dynamics of innovation: From national systems and “Mode 2” to a Triple Helix of university-industry-government relations]. रिसर्च पॉलिसी, 29(2), 109–123.
2. ओईसीडी. (1996). ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था [The knowledge-based economy]. पेरिस, फ्रांस: आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन.
3. कोहेन, डब्ल्यू. एम., व लेविथल, डी. ए. (1990). अवशोषण क्षमता: अधिगम एवं नवाचार का एक नया परिप्रेक्ष्य [Absorptive capacity: A new perspective on learning and innovation]. एडमिनिस्ट्रेटिव साइंस क्वार्टरली, 35(1), 128–152.
4. चेस्ब्रो, एच. (2003). खुला नवाचार: प्रौद्योगिकी से मूल्य-सृजन एवं लाभार्जन की नई अनिवार्यता [Open innovation: The new imperative for creating and profiting from technology]. बोस्टन, एमए: हार्वर्ड बिज़नेस स्कूल प्रेस.

5. ड्रकर, पी. एफ. (1993). उत्तर-पूँजीवादी समाज [Post-capitalist society]. न्यूयॉर्क, एनवाई: हार्परबिज़नेस.
6. नेल्सन, आर. आर. (सं.). (1993). राष्ट्रीय नवाचार प्रणालियाँ: एक तुलनात्मक विश्लेषण [National innovation systems: A comparative analysis]. न्यूयॉर्क, एनवाई: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. नोनाका, आई., व ताकेउची, एच. (1995). ज्ञान-सृजक कंपनी: जापानी कंपनियाँ नवाचार की गतिकी किस प्रकार रचती हैं [The knowledge-creating company: How Japanese companies create the dynamics of innovation]. न्यूयॉर्क, एनवाई: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
8. पेरेज़, सी. (2002). प्रौद्योगिकीय क्रांतियाँ एवं वित्तीय पूँजी: बुलबुलों एवं स्वर्ण-युगों की गतिकी [Technological revolutions and financial capital: The dynamics of bubbles and golden ages]. चेल्सनहैम, यूके: एडवर्ड एलगर.
9. पोर्टर, एम. ई. (1990). राष्ट्रों का प्रतिस्पर्धात्मक लाभ [The competitive advantage of nations]. न्यूयॉर्क, एनवाई: फ्री प्रेस.
10. फागरबर्ग, जे. (2005). नवाचार: साहित्य की एक मार्गदर्शिका [Innovation: A guide to the literature]. जे. फागरबर्ग, डी. सी. मावरी, व आर. आर. नेल्सन (सं.), द ऑक्सफ़ोर्ड हैंडबुक ऑफ़ इनोवेशन में (पृ. 1–26). ऑक्सफ़ोर्ड, यूके: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
11. फ्रीमैन, सी. (1987). प्रौद्योगिकी नीति एवं आर्थिक निष्पादन: जापान से सीख [Technology policy and economic performance: Lessons from Japan]. लंदन, यूके: पिंटर.
12. मोकिर, जे. (2002). एथेना के उपहार: ज्ञान अर्थव्यवस्था के ऐतिहासिक उद्गम [The gifts of Athena: Historical origins of the knowledge economy]. प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
13. यूनेस्को. (2005). ज्ञान समाजों की ओर: यूनेस्को विश्व रिपोर्ट [Towards knowledge societies: UNESCO world report]. पेरिस, फ्रांस: यूनेस्को प्रकाशन.
14. रोजर्स, ई. एम. (2003). नवाचारों का प्रसार [Diffusion of innovations] (5वाँ सं.). न्यूयॉर्क, एनवाई: फ्री प्रेस.
15. रोमर, पी. एम. (1990). अंतर्जात प्रौद्योगिकीय परिवर्तन [Endogenous technological change]. जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल इकोनॉमी, 98(5), S71–S102.
16. लुंडवाल, बी.-ऑ. (सं.). (1992). राष्ट्रीय नवाचार प्रणालियाँ: नवाचार एवं अंतःक्रियात्मक अधिगम के एक सिद्धांत की ओर [National systems of innovation: Towards a theory of innovation and interactive learning]. लंदन, यूके: पिंटर.
17. विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग [डब्ल्यूसीईडी]. (1987). हमारा साझा भविष्य [Our common future]. ऑक्सफ़ोर्ड, यूके: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

18. विश्व बैंक. (1999). विश्व विकास रिपोर्ट 1998/99: विकास हेतु ज्ञान [World development report 1998/99: Knowledge for development]. न्यूयॉर्क, एनवाई: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
19. शुम्पीटर, जे. ए. (1934). आर्थिक विकास का सिद्धांत [The theory of economic development]. कैम्ब्रिज, एमए: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
20. संयुक्त राष्ट्र. (2015). हमारी दुनिया का रूपांतरण: सतत विकास हेतु 2030 एजेंडा [Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development] (A/RES/70/1). न्यूयॉर्क, एनवाई: संयुक्त राष्ट्र.
21. सेन, ए. (1999). स्वतंत्रता के रूप में विकास [Development as freedom]. ऑक्सफोर्ड, यूके: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
22. सैक्स, जे. डी. (2015). सतत विकास का युग [The age of sustainable development]. न्यूयॉर्क, एनवाई: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.
23. सोलो, आर. एम. (1957). प्रौद्योगिकीय परिवर्तन एवं समग्र उत्पादन फलन [Technical change and the aggregate production function]. द रिव्यू ऑफ़ इकोनॉमिक्स एंड स्टैटिस्टिक्स, 39(3), 312–320.
24. स्टिग्लिट्ज़, जे. ई. (1999). वैश्विक सार्वजनिक हित के रूप में ज्ञान [Knowledge as a global public good]. आई. कौल, आई. गुनबर्ग, व एम. ए. स्टर्न (सं.), ग्लोबल पब्लिक गुड्स: इंटरनेशनल कोऑपरेशन इन द 21st सेंचुरी में (पृ. 308–325). न्यूयॉर्क, एनवाई: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
25. हॉल, बी. एच., व रोज़नबर्ग, एन. (सं.). (2010). हैंडबुक ऑफ़ द इकोनॉमिक्स ऑफ़ इनोवेशन [Handbook of the economics of innovation]. एम्सटर्डम, नीदरलैंड्स: नॉर्थ-हॉलैंड.